भारती-भूषण

बाबू गिरिधर दास

बंगीय हिन्दी परिषद
कलकत्ता

प्रकाशक :-
बंगीय हिन्दी परिषद
१५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता-१२

प्रथम संस्करण १६६०
मूल्य १ रु० २५ न० पै०

मुद्रक :-
दीप प्रिन्टर्स
२४।३, रतन सरकार गार्डेन स्ट्रीट,
कलकत्ता-७

भारती-भूषण

श्री वल्लभ आचार्य्यं के भजत-भजत सब पाप।
श्री वल्लभ करुणा करत हरत सकल संताप ॥१॥
विधि भव तरनी हम लही जम गरूर करुनाहिं।
विधि भव तरनी नमत नित हरि पद मम उर माहिं ॥२॥
मोहन मन मानी सदा बानी को करि ध्यान।
अलंकार बरनन करत गिरिधर दास सुजान ॥३॥
सुन्दर बरनन गन रचित भारति भूषन एहु।
पढ़हु गुनहु सीखहु सुनहु सत कवि सहित सनेहु ॥४॥

सो उपमा जँह बरनिये उपमेय रु उपमान।
समताई शोभित सदा इमि कवि कहहिं सुजान ॥५॥

आनन पंचानन तिलक पंचानन कटि सोह।
खरी रमा-सी राधिका भरी मोद संदोह ॥६॥
जाकी समता दीजिए तिहि कहिए उपमान।
जाको सम करि बरनिए सो उपमेय न आन ॥७॥
उपमेयरु उपमान गत जो कछु धरम लखाय।
सो साधारण धर्म है इमि बरनहिं कविराय ॥८॥
समता बोधक शब्द को उपमा वाचक नाम।
बरने गिरिधर दास इमि लच्छन स्वच्छ सुदाम ॥९॥
कंबु कमल अरु बिम्ब फल सुक सुवरन की सीप।
इनहिं आदि उपमान हैं समुझहु कवि कुल दीप ॥१०॥

कण्ठ आँखि अलकावली अधर नासिका स्रौन।
इनहिं आदि उपमेय हैं बरनहिं वर-बुधि मौन ॥११॥
सुन्दरता सुकुमारता श्यामलता सुललाम।
ए साधारन धर्म हैं मन हरता रसधाम ॥१२॥
लौं सो से सी सीं सरिस सम समान इव तूल।
ऐसौ ऐसे ए सकल उपमा वाचक मूल ॥१३॥
जिमि तिमि जैसोइ तैसोई यथा तथा ज्यों त्योहिं।
ए ऊ उपमा वाचकहि दोय मिले ते होहिं ॥१४॥

पूर्णोपमा ल० उपमान रु उपमेय जहँ उपमा वाचक होइ।
सह साधारन धर्म के पूरन उपमा सोइ ॥१५॥

उदा० मुख सुख करनि सिकर सरिस सफरी से चल नैन।
छीन लंक हरि लंक सी ठाढ़ी ऐना ऐन ॥१६॥

लुप्तोपमा ल० उपमानादिक जे कहें तिन चारिहूं मंझारि।
इक बिन द्वै बिन तीन बिन लुप्तोपमा विचारि ॥१७॥

वाचक लुप्ता प्रथम बिन उपमा वाचक होइ।
द्वितिय धर्म लुप्ता कहिय धर्म रहित है सोइ ॥१८॥
तीजी है वाचक धरम लुप्ता सुकवि सुजान।
बिन वाचक उपमेय के लुप्ता चौथी जान ॥१९॥
पंचई है उपमान बिन बिन वाचक उपमान।
छटी धरम उपमान बिन सतई लुप्ता जान ॥२०॥
उपमान रु वाचक धरम लुप्ता अठई जानि।
आठ भांति लुप्तोपमा कवि जन कहहिं बखानि ॥२१॥
वाचक उदा० मुख पूरन ससि सोहनो अमल कमल दल मैन।
कनक बेलि कल कामिनी माखन मधुरे बैन ॥२२॥

धर्म उदा०	बिज्जुलता सी नागरी सजल जलद से श्याम।
	खरे कुंज मैं छवि भरे दोऊ अति अभिराम ॥२३॥
वाचक धर्म	बैन सुधा दृग मैन सर सैन सैन के अैन।
उदा०	बदन रैन पति लखहु हरि रैन चैन वर दैन ॥२४॥
वाचकोपमेय	अटा उदय होतो भयो छबि धर पूरन चन्द।
उदा०	हों बलि चलि अवलोकियै मनमथ करन अनंद ॥२५॥
उपमान उदा०	सुन्दर कंठ कपोत सो केहरि सी कटि खीन।
	जे हरि झमकावै खरी हे हरि कुंज गलीन ॥२६॥
वाचकोपमान	भवन दीप कामिनी दिपति सरप सांस गुर लेति।
उदा०	कौन हेतु हरि मौन वह बूझहुं उत्तरु देति ॥२७॥
धर्मोपमान	घन सम रन गरजत फिरैं करैं काल सी मारि।
उदा०	सागर सी गम्भीरता समर धीर त्रिपुरारि ॥२८॥
उपमान-वाचक-	मृग नैनी गजगामिनी पिक बैनी सुकुमारि।
धर्म उदा०	केहरि कटि वारी खरी नारी लखो मुरारि ॥२९॥
मालोपमा ल०	जहं एकहि उपमेय के बरने बहु उपमान।
	ताहि कहहिं मालोपमा कवि सुजान मतिमान ॥३०॥
उदा०	मृग से मनमथ वान से पीन मीन से स्वच्छ।
	कंजन से खंजनन से मनरंजन तो अच्छ ॥३१॥
रसनोपमा ल०	कथित प्रथम उपमेय जहँ होत जात उपमान।
	ताहि कहहिं रसनोपमा जे जग सुकवि प्रधान ॥३२॥
उदा०	मति सी नति नति सी बिनति बिनती सी रति चारु।
	रति सी गति गति सी भगति तो मैं पवन कुमारु ॥३३॥
अनन्वय ल०	एक हि मैं उपमेयता उपमानता जु होइ।
	दूजे सों समता नहीं यहै अनन्वै सोइ ॥३४॥

उदा०	तुव कीरती सी स्वच्छतर तुव कीरती है श्याम।
	सुरसरिता सी सुरसरी शोभा भरी मुदाम ॥३५॥
उपमेयोपमा	है द्वै ही जहं परसपर उपमेयरु उपमान।
ल०	सो है उपमेयोपमा तीजे सो समतान ॥३६॥
उदा०	अमल कमल से नैन हैं कमल नैन से स्वच्छ।
	रुचिर काम से श्याम हैं हरि सम काम प्रतच्छ ॥३७॥
प्र० प्रतीप ल०	उपमेय हि उपमान जब कीजै गिरिधर दास।
	ताकौं पांच प्रतीप मैं प्रथम जानिये खास ॥३८॥
उदा०	तो ऐसी तिय कम की तो मुख सोए केस।
	नव पल्लव तवअधर से कचुकंठ सम वेस ॥३९॥
द्वि० प्रतीप ल०	जहं प्रतीप उपमान को गर्व हरे उपमेय।
	दूजौ कहहिं प्रतीप तेहि जिनकी बुद्धि अमेय ॥४०॥
उदा०	कहा करति निज रूप को गरब गहे अविवेक।
	रमा उमा सचि सारदा तोसी तीय अनेक ॥४१॥
तृ० प्रतीप ल०	अन आदर उपमेय सों जब पावै उपमान।
	तीजो कहहिं प्रतीप तेहि कवि अवनीप सुजान ॥४२॥
उदा०	नीच पने को क्यों करत तूं उर बीच गुमान।
	अन्त्यज तोसे अधिक जग हरि द्वेषी पहिचान ॥४३॥
चतु० प्रतीप ल०	समता लायक होय नहिं जब जाहिर उपमान।
	गिरिधर दास प्रतीप सो है चतुर्थ मतिमान ॥४४॥
उदा०	तो मुख ऐसो पंक सुत अरु ससंक यह बात।
	बरनहि वृथा असंक कवि बुद्धि रंक विख्यात ॥४५॥
पं० प्रतीप ल०	व्यर्थ होई उपमान जब वर उपमेय समीप।
	गिरिधर दास बखानियै पंचम ताहि प्रतीप ॥४६॥

उदा॰	देखि रूपवत कामिनी कहा उरवशी नारि।
	कहा मनका मैन तिय कमला शैलकुमारि ॥४७॥
द्विविध रूपक	विषई विषयहि बरनिये करि अभेद तद्रूप।
ल॰	अधिक न्यून सम करि सोई षट विधि रूपक रूप ॥४८॥
अधिकोक्ति	घन गज चढ़ि आकाश मग चले इन्द्र अरि जोइ।
अभेद रू॰ उदा॰	सुधा अवत शशि छत्र सिर मोतिन जगमग होइ ॥४९॥
न्यूनोक्तिरूपक	कुसुम धनुष बिनु कुसुम धनु देखो कुंज गलीन।
उदा॰	चलीजात जग अमल यह कमला कमल विहीन ॥५०॥
समोक्ति अभेद	तुअ आनन ससि दुख हरन सुधा धरन छबि खानि।
रू॰ उदा॰	रजनी रंजन रसिक प्रिय तमहर आनन्द हानि ॥५१॥
अधिकोक्ति	जस धुज वाधुज तें अधिक तीन लोक फहरात।
तद्रूप रू॰ उदा॰	धर्म मित्र बड़ मित्र सों मरत जियत संग जात ॥५२॥
न्यूनोक्ति तद्रूप	अपर धनेश जनेश यह नहिं पुष्पक आसीन।
रू॰ उदा॰	दुत्तिय गणेश सुवेश शुचि सोहत सुँड विहीन ॥५३॥
समोक्ति तद्रूप	यह पालत संसार को घालत पर को पच्छ।
रू॰ उदा॰	अपर मनोहर रूप धर अंबुज अच्छ प्रतच्छ ॥५४॥
परिणाम ल॰	बरननीय उपमान है जबै करै कछु काम।
	गिरिधर दास बखानिए तासु नाम परिनाम ॥५५॥
उदा॰	पद पंकज तें चलत बर कर पंकज लै कुंज।
	मुख पंकज तें कहत हरि बचन रचन मुद मंजु ॥५६॥
उल्लेख ल॰	एकहि बहु बहु विधि लखैं इकहिं बरनि बहु रीति।
	उल्लेखालंकृत उभय कवि बरनहिं करि प्रीति ॥५७॥
प्र॰ उल्लेख	तियन काम जादवन हित नन्द सुवन नव अंग।
उदा॰	लख्यौ कंस जन मुनिन हरि मोहन प्रविसे रंग ॥५८॥

द्वि० उल्लेख	तेज तरनि मुददानि शशि शत्रन काल मुहाम।
उदा०	ब्रजनारिन कों काम से अहौ सदा घनश्याम ॥५९॥
सुमिरन भ्रम	सुमिरन भ्रम सन्देह ए अलंकार हैं तीन।
सन्देह ल०	लक्षण लक्षित नाम मैं बरनहिं सुकवि प्रवीन ॥६०॥
सुमिरन उदा०	सुनि कोकिल धुनि वचन की आवति है सुधि मोहि।
	लखि शशि मुखकी होति सुधि तन सुधि घनको जोहि॥६१॥
भ्रम उदा०	जानि श्यामघन घन तुम्हें नाचि उठै बन मोर।
	हेम सलाका मानि तोहि चोर फिरैं सब ओर ॥६२॥
सन्देह उदा०	रमा कि राधा कै गिरा गिरिजा कै रति जानि।
	श्याम काम धौं कल्पतरु नारायण मुद दानि ॥६३॥
शुद्धापह्नुति	धर्म दुरावै और ही करि आरोप सुजान।
ल०	शुद्धापह्नुति कहहि तेहि अलंकार मति मान ॥६४॥
उदा०	पहिरे श्यामन पीत पट घन में बिज्जु विलास।
	सिर सारी महिं तास की इन्दुकला परकास ॥६५॥
हेत्वापह्नुति	सोइ शुद्धापह्नुति विषे उक्ति जुक्ति जुत यत्र।
ल०	गिरिधर दास बखानिए हेतु अपह्नुति तत्र ॥६६॥
उदा०	तियननि साथन बन चलै हेम बेलि नहिं जाय।
	छटकि जलद तें जलद बहु दामिनि जात लखाय ॥६७॥
पर्यस्तापह्नुति	और बिषें गुन और को जब कीजै आरोप।
ल०	नव पर्यस्तापह्नुती इमि कवि कहहिं सचोप ॥६८॥
उदा०	नहीं सक्र सुरपति अहै सुरपति नन्द कुमार।
	रतनाकर सागर नहीं मथुरा नगर बजार ॥६९॥
हेतुपर्यस्ताप	पर्जस्तापह्नुति विषें हेतु सहित जो कोई।
ल०	धर्म छपावे हेतु जुत वही नाम तब होइ ॥७०॥

उदा०	तम हर रवि नहीं हरिभजन तमी होइ रविलोक।
	कहुँ तम रहै न हरिभजै इमि बरनहिं मति ओक ॥७१॥
भ्रान्तापह्नुति ल०	भ्रान्ति और की और जब करै वचन सों नास।
	भ्रान्तापह्नुति कहहिं तेहि कविजन गिरिधरदास ॥७२॥
उदा०	जीवन दीनो श्याम घन सजनी रजनी आइ।
	क्यों सखि बिन बरसात के नहिं नहिं गोकुलराइ ॥७३॥
छेकापह्नुति	सङ्का नासै और की सांची बात दुराइ।
ल०	छेकापह्नुति कहत हैं ताहि कविन के राइ ॥७४॥
उदा०	ऐंचि चीर तन सछत किय हरे सिंगार समच्छ।
	कुंजन में क्यों श्याम सखि नहिं करील को बृच्छ ॥७५॥
कौतवापह्नुति	औरहि बरनै औरई मिसि करि वर मति मान।
ल०	ताहि कौतवापह्नुति भूषण कहहिं सुजान ॥७६॥
उदा०	कुच मिस करि मनमथ मथन तिय उर करत निवास।
	पावस मिस कर बज्र लै इन्द्र देत ब्रज त्रास ॥७७॥
उत्प्रेक्षा ल०	उत्प्रेक्षा बिधि तीन हैं इहिविधि कहहिं प्रवीन।
	वस्तु हेतु फल रूप करि जिनकी मति रस पीन ॥७८॥
वस्तु हेतु फल	वस्तु द्विविध उक्ता सपद अनुक्ता सपद जानि।
वर्णन	हेतु सुफल सिद्धा सपद असिद्धा सपद मानि ॥७९॥
उक्तास्पद	हालाहल निकस्यो महा भरत ज्वाल की जाल।
	सिन्धु मथत मानो कढ़ी बड़वानल की ज्वाल ॥८०॥
अनुक्तास्पद	बरषत मानो चन्द्रमा किरिन बज्र कन वान।
वस्तूत्प्रेक्षा उदा०	सावन में धावन लगे धनु यम गन असमान ॥८१॥
हेतुसिद्धास्पदो-	तुअ करण ते लसत मनु गही हिंडोरा डोर।
त्प्रेक्षोदा०	तो पट छाया परत मनु श्यामल नन्द किशोर ॥८२॥

हतु असिद्धा-	तोई छन समता चहत मानहु तीछन वान।	
स्पदोत्प्रेक्षोदा०	छूटि महीप कमान सों लेहिं मृगन को प्रान ॥८३॥	
फलसिद्धा-	मोहि लखि चपला सकुचि पुनि घनमें जाति समाइ।	
स्पदोत्प्रेक्षोदा०	यों गुनि तिय मनु मूँदि मुख मंदिर बैठी आइ ॥८४॥	
फल असिद्धा-	तो कटि समता हेतु मनु सिंह करत बन वासु।	
स्पदोत्प्रेक्षोदा०	कुच समता हित सहत मनु गिरि हिम घाम बतासु ॥८५॥	
उत्प्रेक्षा व्यंजकल०	उत्प्रेक्षा व्यंजक मनहुँ मनु जनु आदिक आहिं।	
	जहाँ नहीं ए जानिए गम्योत्प्रेक्षा ताहिं ॥८६॥	
गम्योत्प्रेक्षा	तोर तीर तरु के सुमन वर सुगन्ध के मौन।	
उदा०	जमुना तो पूजन करत बृन्दावन को पौन ॥८७॥	
रूपकाति-	जहँ व्यंजक उपमेय को कहि केवल उपमान।	
शयोक्ति ल०	रूपकातिशयउक्ति तिहि बरनहिं बुद्धि निधान ॥८८॥	
उदा०	ससि में विद्रुमता विषें कुंदावलि दरसाइ।	
	तापैं सुक सुक पैं धनुष बिबिसर सहित लखाइ ॥८९॥	
सापह्नुव रूपका-	पर्य्यस्तापह्नुतिं सहित यही अलंकृत यत्र।	
तिशयोक्ति ल०	सापन्हव रूपक सहित अतिशयोक्ति है तत्र ॥९०॥	
उदा०	तु मुख मैं निवसत सुधा से राधे सुकुमारि।	
	ताहि बखानै चन्द्रमा बिन बूझै भ्रम धारि ॥९१॥	
भेदकातिशयोक्ति	और पद भेदक जहाँ अतिशयोक्ति मैं होइ॥	
ल०	भेदकातिशय उक्ति वर अलंकार है सोइ ॥९२॥	
उदा०	अवलोकनि बोलनि हंसनि डोलनि औरै और।	
	आवनि मृदु गावनि सबै और याके तौर ॥९३॥	
सबन्धातिशयो-	जहाँ देत सम्बन्ध सों सुकवि अयोगहि योग।	
क्ति ल०	संबन्धातिशयोक्ति तिहि बरनत पंडित लोग ॥९४॥	
उदा०	चलत अवध पुर पियत जल नभ सरि को भरि सुंड।	
	कलस लेत धुव धाम के तुम्हरे राम भसुंड ॥९५॥	

असंबंधाति-	जोगहि करिय अजोग जब मति अनुसार प्रकास।
शयोक्ति ल०	असंबंध अतिशय उकुति कहियै गिरिधर दास ॥ ९६॥
उदा०	रवि पावै सनमान क्यों तेज देखि तुअ भूप।
	पवि सर तें कवि बुद्धि तें सदा निरादर रूप ॥९७॥
अक्रमातिशयोक्ति	कारण औ कारज जबै दुहूँ बरनियै संग।
ल०	अक्रमातिशय उक्ति सों भूषन कविता अंग ॥९८॥
उदा०	उठ्यो संग गजकर कमल चक्र चक्र धर हाथ।
	कर तें चक्र सुनकर सिर धरतें बिलग्यो साथ ॥९९॥
चपलातिशयोक्ति	कारन के नामहिं सुनै कारज आपुहि होई।
ल०	चपला अतिशय उक्ति यह अलंकार है सोइ ॥१००॥
उदा०	जान कह्यौ परदेश पिय सुनि सूखी यों बाल।
	मुंदरी कर पहुँची भई पहुँची उर की माल ॥१०१॥
अत्यन्ताशियोक्ति	पूर्वा पर क्रम ना मिलै जाको गिरिधर दास।
ल०	अत्यन्तातिशयोक्ति तेहि कविजन करहिं प्रकास ॥१०२॥
उदा०	हनूमान की पूछ मैं लगन न पाइ आगि।
	लंका सिगरी जरि गई गये निशाचर भागि ॥१०३॥
तुल्ययोगिता	क्रिया और गुनकरि जहां धर्म एकता होइ।
ल०	वर्ण्य को कै इतर को तुलययोगिता सोइ ॥१०४॥
प्रस्तुततुल्य-	अरुन उदय अवलोकि कै सकुचहिं कुवलै चोर।
योगिता उदा०	इन्दु उदय लखि स्वैरिनी बदन बनज चहुँ ओर ॥१०५॥
अप्रस्तुततुल्य-	लखि तेरी सुकुमारता ए री या जग माहिं।
योगिता उदा०	कमल गुलाब कठोर से काको भासत नाहिं ॥१०६॥
द्वि० तुल्ययोगिता	तुल्य वृत्ति हित अहित मैं जब बरनिय निरधारि।
ल०	तुल्य योगिता अपर यह बरनहिं सुकवि विचारि ॥१०७॥
	गिरिधर दास जहान मैं तुम अति चतुर सुजान।
	सर क्रीड़ा करि हरत हौ तिय को अरि को मान ॥१०८॥

तृ० तुल्ययोगिता	सम करिये उत्कृष्ट गुन बहु को एकहि ल्याइ।
	तुल्ययोगिता तीसरी ताहि कहैं कवि राई ॥१०९॥
उ०	तुम विधि बुध बिधु विबुधपति बिधुधर बुद्धि निधान।
	तुमहि भूप हौ कलपतरु गुन निधि चतुर सुजान ॥११०॥
दीपक—ल०	जहँ अवर्ण्य अरु वर्ण्य को धर्म एक गुन स्नेहु।
	अलंकार दीपक इही नाम तासु कहि देहु ॥१११॥
उ०	सोहत भूपति दान सौं फल फूलन आराम।
	ऊँचे तन सों द्विरद वर गति सों अश्व सुदाम ॥११२॥
आवृति दीपक	आवृत्ति दीपक तीन विधि पद आवृत इक जानि।
ल०	अर्थावृत पद अर्थ की आवृति इमि पहिचानि ॥११३॥
पद आवृति दी०	नंद सुवन ब्यारु करत बाढ़ी प्रीति अथोर।
उ०	परसति सुन्दरि सरस तिय परसत दृग दृग कोर ॥११४॥
अर्थावृति दी०	दौरहिं संगर मत्त गज धावहिं हय समुदाय।
उ०	नटहि रंग महिं बहु नटी नाचहिं नट हरषाय ॥११५॥
पदार्थावृत्ति दी०	गरजत हैं रन राम जू गरजत है दससीस।
उ०	धावत रिसिभरि रजनीचर दुहुँ दिशि धावत कीस॥११६॥
प्रतिवस्तूपमा	होहिं वस्तु प्रति सम जबै उपमेयरु उपमान।
ल०	जुदे जुदे पद करि कहि प्रति वस्तूपम जान ॥११७॥
उ०	साधु संग पायहु नहीं खल को खलपन जाय।
	सुधा पियाअहु अहि नहीं तजै गरल दुखदाय ॥११८॥
दृष्टान्त	वर्ण्य अवर्ण्य दुहून को भिन्न धर्म दरसाइ।
ल०	जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब सों सो दृष्टान्त कहाइ ॥११९॥
उ०	रूपवती तुमहीं अहो रती यशवती जानि।
	नृप तुमहीं दानी अहौ दानि सुर तरु मानि ॥१२०॥
निदर्शना	तीन प्रकार निदर्शना कवि बरनहिं सविवेक।
ल०	सदृश दोऊ वाक्यार्थ को एकारोपन एक ॥१२१॥

उ०	जो दाता की सरल चित नहीं कुटिलता भास।
	पूरन विधु अकलंकता जानिय गिरधरदास ॥१२२॥
निदर्शना द्वि०	उपमानौ उपमेय को धर्म धरै जब ल्याइ।
ल०	पलटेहुँ सुनिदर्शना दुत्तिय कहहिं कविराइ ॥१२३॥
उ०	लई चपलई मीन की तो दृग नारि निहारु।
	नृप तो पानि उदारता लीनी सुरतरु चारु ॥१२४॥
तृ० निदर्शना	जहँ सदर्थ असदर्थ को बोध क्रिया करि होइ।
ल०	तीजी तहां निदर्शना बरनहिं कवि सब कोय ॥१२५॥
सदर्थ उ०	गुरु पादोदक सिर धरिय सदा जतावत एहु।
	सिर धारत हैं गंग को महादेव करि नेहु ॥१२६॥
असदर्थ उ०	निडरपनी करि बड़न को नास जनावत जाति।
	करत मसाल मुकाबिलो बाती तुरत बुझाति ॥१२७॥
व्यतिरेक ल०	बरनिय वर्ण्य अवर्ण्य मैं जहँ विशेष कविराइ।
	अधिक न्यून सम भेद करि सो व्यतिरेक कहाइ ॥१२८॥
अधिक उ०	भूप कल्पतरु से अहौ वैभव बुद्धि विशेषि।
	तिय पल्लव से तो अधर अधिक अमृत रस पेषि ॥१२९॥
न्यून व्य० उ०	हरि से हरिजन जानु पै हरि घट घट विश्राम।
	कुटिल सर्प से पै सरप डसतहिं करत तमाम ॥१३०॥
सम उ०	जो निज घेरे मैं परत चूर करत दलताहि।
	पथ्य संग पै गहत नहिं खल खलवृन्द सदाहि ॥१३१॥
सहोक्ति ल०	जहं मनरंजन बरनियै एक संग बहु बात।
ल०	सो सहोक्ति आभरण है ग्रन्थन में विख्यात ॥१३२॥
उ०	आई चतुराई लिये तरुनाई तो अंग।
	मन मोहन सो मन मिल्यो इन नैनन के संग ॥१३३॥
विनोक्ति ल०	द्वै विध कहहिं विनोक्ति को सुकवि बुद्धि के ऐन।
	प्रस्तुत कछु बिन न्यून अरु कछु बिन शोभा दैन ॥१३४॥

प्र० विनोक्ति	कवि बिन नहिं सोहै सभा निसि बिन सुधा निवास।
उ०	फबत न गिरिधरदास बिन गिरिधर गिरिधर दास॥१३५॥
द्वि० विनोक्ति	धन्य धन्य तो को धनी बिना गरब सरसात।
ल०	राम राज तब सुयश करत साकर पुनि दरसात॥१३६॥
समासोक्ति	प्रस्तुत मैं जबहिं फुरै अप्रस्तुत वृतान्त।
ल०	समासोक्ति भूषण कहैं, ताको कवि कुल कान्त॥१३७॥
उ०	सजनी रजनी पाइ शशि बिहरत रस भरपूर।
	आलिंगत प्राची मुदित कर पसारि कै सूर॥१३८॥
परिकर ल०	जहाँ विशेष न दीजिये सह आशय अभिराम।
	गिरिधर दास बखानियै भूषण परिकर नाम॥१३९॥
उ०	चक्रपानि हरि कों निरखि असुर जात भजि दूर।
	रस बरसत घनश्याम तुम ताप हरत मुद पूर॥१४०॥
परिकरांकुर	जहाँ विशेष्यहिं वरनिये अभिप्राय के संग।
ल०	परिकर अंकुर तौन है भूपण कविता अंग॥१४१॥
उ०	मो रसना ते आज वहु पिय तें कहें कुबोल।
	आवत हीं पुजवावतो सूर प्रताप अतोल॥१४२॥
श्लेष ल०	बहुत अर्थ जुत श्लेष है भूपण कहहिं प्रवीन।
	वर्ण्य अवर्ण्य दुहून के आश्रित भेद सुतीन॥१४३॥
प्रकृतानेक विषय-श्लेष उ०	अहि सवार अरि बान जित नरक दलक जित काक। विजय मित्र बल बन्धु सुत भुज कृत कुवरी वाक॥१४४॥
अप्रकृतानेक विषयश्लेष उ०	तिय तो ऐसी चंचला जीवन सुखद समच्छ। बसति हृदय घनश्याम के वर सारंग सुअच्छ॥१४५॥
प्रकृताप्रकृत अनेक विषय उ०	रति वल्लभ कर कुसुम वर रंग श्याम घन चारु। विप मैं सर पदु में गहे जलचर केतु उदारु॥१४६॥
अप्रस्तुत प्रशंसा	अप्रस्तुत बरनन विषै प्रस्तुत बरन्यो जाय।
ल०	अप्रस्तुत परसंस तेहि कहि हैं कविन के राय॥१४७॥

उदा॰	धन्य शेश सिर जगत हित धारत भुवि को भार।
	बुरो बाघ अपराध बिनु मृग को करत आहार ॥१४८॥
प्रस्तुतांकुर ल॰	द्योतन प्रस्तुत को जबै प्रस्तुत ही सों होइ।
	प्रस्तुत अंकुर आभरन ताहि कहि हैं सब कोइ ॥१४९॥
उदा॰	तूं गज तजि मंदाकिनी सरिता छुद्र अन्हात।
	कहा अली तजि मालती सालमली ढिग जात ॥१५०॥
पर्यायोक्ति	कहिय बात रचनान करि पर्यायोक्ति बखानि।
ल॰	मिसु करि कारिज साधियै यही अलंकृत जानि ॥१५१॥
प्रथम उदा॰	जाको मन सब जगत मनि जग प्रमाण इक स्वांस।
	तिनके सब के चरण कौं वंदत गिरधर दास ॥१५२॥
द्वितीय उदा॰	सुन्दर श्यामा श्याम दोउ घरि कर होइत आज।
	तबलौं आवति होइ मैं वा बन करि कछु काज ॥१५३॥
व्याजस्तुति ल॰	व्याज स्तुति निंदा मिसौ स्तुति जहँ बरनी जाइ।
	निंदा मिस स्तुति मिसौ स्तुति बरनहिं कविराइ ॥१५४॥
निन्दा व्याज	भक्त वत्सल घनश्याम जू तुम सों अहै न और।
स्तु॰ उदा॰	राखत सबके मनहि हौ कहूँ साँझ कहुँ भोर ॥१५५॥
अस्तुतिनिंदा व्याज	यमुना तुम अविवेकिनी कौन लियो यह ढंग।
उदा॰	पापिन सों निज बन्धु को मान करावत भंग ॥१५६॥
अस्तुति व्याजस्तुति	एक बार नामहिं लिये करत कोटि अघ नास।
उदा॰	धन्य सन्त जा उर करत ऐसे के सब बास ॥१५७॥
व्याज निंदाल॰	जहँ निन्दा के व्याज करी निन्दा ही दरसाय।
	ताहि व्याज निन्दा कहैं अलंकार कविराय ॥१५८॥
उदा॰	नरक द्वार नारी विषैं रहत सदा लयलीन।
	गरक पाप महँ लोहिं धिक कामी बुद्धि विहीन ॥१५९॥
आक्षेप ल॰	तीन भांति आक्षेप हैं कवि बरनहिं सविवेक।
	कही बात कौं समुझि कछु करै निषेध सु एक ॥१६०॥

जहां निषेधाभास तहँ है आक्षेप द्वितीय।
छिप्यो निषेध रहै जहां आज्ञा प्रकट तृतीय ॥१६१॥

प्रथमाक्षेप — हरि दीजै बैकुंठ कै वृन्दावन को वास।
उ० — सर्व भौम भूपति करौ अथवा अपनो दास ॥१६२॥

द्वि० आक्षेप उ० — मैं कवि हौं नहिं भूमिपति तुम से तुम जगमाहिं।
नहिं मैं दुती राधिके तुम बिन हरि बिलखाहिं ॥१६३॥

तृ० आक्षेप उ० — जाहु जाहु परदेश पिय मोहि न कछु दुख भीर।
प्रानु आपु संग जाइगो रहिहैं इतै शरीर ॥१६४॥

विरोधाभास — भास जहाँ बिरोध सो अहै विरोधाभास।
ल० — भूषण इमि बरनन करहिं कविजन गिरिधरदास ॥१६५॥
उ० — मोहन है तोहि मोह अति याकि उर के माहिं।
चार चक्षु नृप दृग दोऊ पंकज से दरसाहिं ॥१६६॥

विभावना — षट विधि होति विभावना बिन कारण के काज।
ल० — द्वितीय अपूरन हेतु तें पूरन कारज साज ॥१६७॥
प्रतिबन्धक के अछत हूँ कारज होइ तृतीय।
काज अकारन तें जहां सो चतुर्थ कथनीय ॥१६८॥
उपजै हेत विरुद्ध तें कारज पंचम सोइ।
कारन जनमैं काज तें छठी बिभावन होइ ॥१६९॥

प्रथम बिभावनाउ० — बिन मादक हरि नैन तुव घूमत अरुन लखाय।
बिन मेंहदी करतल अरुन बिन जावक के पाय ॥१७०॥

द्वि० विभा० उ० — एक चक्ररथ बैठि रवि फिरत करोरन कोस।
करत अरध कर-पग अरुन सारथिपनो अदोस ॥१७१॥

तृ० विभा० उ० — श्याम हृदय सुमिरत तऊ अति उज्जल मन होइ।
जीव हरत पर नृप तऊ स्वर्ग लहत अघ खोइ ॥१७२॥

च० बि० उ० — विद्रुम मैं ते हैं कठी कुंद कली समुदाय।
दिवस प्रकाशित देखियत नखत सहित द्विजराय ॥१७३॥

पं० विभा० उ०	सीतल मन्द सुगन्ध जुत ताप चढ़ावत पौन।
	फूल्यो लखि उड़पति उदम अम्बुज आनन्द भौन ॥१७४॥
ष० विभा० उ०	पङ्कज तें निकसी नदी सोहत गिरधर दास।
	कल्पबृक्ष तैं रतन निधि निकस्यो सहित हुलास॥ १७५॥
बिशेषोक्ति ल०	पुष्कल कारम तैं जहां कारज उपजै नाहिं।
	विशेषोक्ति तेहि कहत हैं कवि जन जग के माहिं॥१७६॥
उदा०	हृदय श्याम घन जनिब रस करत सबहिं छनवास।
	तऊ तहां को ताप नहिं नेकहुँ होत हिरास ॥१७७॥
असम्भव ल०	कार्य सिद्धि की बरनियै असंभाव्यता यत्र।
	अलंकार उर आनियै सुकवि असम्भव तत्र ॥१७८॥
उदा०	लंक जारि है मारि है कोटिन भट बन भौन।
	इक बनचर वन नासि है रच्छो जानत कौन ॥१७९॥
असंगति ल०	काज हेतु इम दुहुन की असंभाव्यता यत्र।
	अति विरुद्ध जानी परैं प्रथम असंगति तत्र ॥१८०॥
उदा०	सिंधु जनिब गरहर पियो मरे असुर समुदाय।
	नैन वान नैनन लग्यो भयो करेजे धाय ॥१८१॥
द्वि० असंगति	और ठौर के काज कों और ठौर करि देइ।
ल०	द्वितिय असंगति समुझियै सुकबि समूह निसेइ ॥१८२॥
उदा०	शीश महावर ओंठ पै अंजन रंजन रूप।
	आजु भोर आये अहो चारु बने वृजभूप ॥१८३॥
तृ० असंगति	और कार्य आरंभिये और कीजिये यत्र।
	तीन असंगति में अहै तृतिय असंगति तत्र ॥१८४॥
उदा०	दुख गोपन कों करन हित, चले गोप सिर मौर।
	दुख गोपन को ना कियो अधिकी कीनो और ॥१८५॥
विषम ल०	तीनि भाँति बरनन करहिं कवि विषमालंकार।
	अन मिलते का संगतित जानहु प्रथम प्रकार ॥१८६॥

कारन औरै रंग को कारज औरै रंग।
तृतीय इष्ट उद्यम कियै लहै अनिष्टहिं संग ॥१८७॥

प्र० विषम — कहँ कोमल दशरथ सुवन कहँ कोमल धनु ईश।
उदा० — कहँ समुद्र योजन अमित अति अगाध कहँ कीश॥१८८॥

द्वि० विषम उ० — दीप सिखा रंग पीत तें धूम कढ़त अति श्याम।
सेत सुयश छायो जगत प्रकट आप ते श्याम ॥१८९॥

तृ० विषम उ० — वनवारी हित बन गई मिले न गोप मयंक।
लहैं नारि घर की सबै झूठहि देहिं कलङ्क ॥१९०॥

सम ल० — बरनत तीन प्रकार हैं सुकवि समलंकारु।
यथा योग को संग को इह प्रथम जानियै चारु ॥१९१॥
कारन कारज दुहुन को एकहिं अंग द्वितीय।
जा हित उद्यम करिय फल पाइय तो न तृतीय ॥१९२॥

प्र० सम उ० — उचित सीस पै सोहतो कस्तूरी के बिन्दु।
सरस सरद राका विषें उदित सुतै सो इन्दु ॥१९३॥

द्वि० सम उ० — वचन चन्द्र की चन्द्रिका हरत ताप मुद दानि।
ब्रज रानी घनश्याम सों सुत जायो छबि खानि ॥१९४॥

तृ० सम उ० — हरि ढूढ़न ब्रज मैं गई पाये गिरिधर लाल।
ब्याह कियो सुख हेतु सों देत सुकीया बाल ।१९५॥

विचित्र ल० — करै यतन विपरीत जहँ फल पावन के हेत।
सो विचित्र भूषण अहै बरनत बुद्धि निकेत ॥१९६॥

उदा० — सुख इच्छा सों सुख तज, जोगी हर्ष समेत।
धन लीबे करन धरनि धनी धनहिं है देत ॥१९७॥

अधिक ल० — जहां पृथुल आधार तें अधिक अधेय सु होय।
पृथुल अधार अधेय तें अधिक अधिक ए दोय ॥१९८॥

प्र० अधिक उ० — उपमा उदधि अपार मैं नहिं समात मुख चन्द।
ज्ञान कथा विस्तार मैं ता बरनत नद नन्द ॥१९९॥

द्वि० अधिक	कितो रूप घनश्याम को रोम-रोम ब्रह्मंड।
उदा०	किती यशोदा गोद जित खेलत ब्रह्म अखंड ॥२००॥
अल्प ल०	होय अल्प आधेय तें और अल्प आधार।
	गिरिधर दास बखानियै तिहि अल्पालंकार ॥२०१॥
उदा०	परमानहु त परम लघु मंगन जग बिख्यात।
	सोऊ तेरे हृदय महँ लोभी ताहि समात ॥२०२॥
अन्योन्य ल०	जहँ उपकार परस्परहि बरनत करि गिरधार।
	ताको कवि जन कहत हैं अन्योन्यालंकार ॥२०३॥
उदा०	नृप तें सेना सोहती सैना तें नर व्रात।
	दूलह लसै बरात सों दूलह सों बरियात ॥२०४॥
विशेष ल०	तीन प्रकार विशेष है कविवर नहिं गुण श्रेय।
	प्रथम ख्यात आधार बिन जहँ बरनिय आधेय ॥२०५॥
	एक वस्तु कहँ बरनिए ठौर अनेक द्वितीय।
	जहाँ अल्प उद्यम किये बहुत सिद्धि तिरतीय ॥२०६॥
प्र० विशेष	गए तमीहूँ तम रह्यो कोठरि बीच समाइ।
उदा०	कमल बिना कमला लया वह बैठी दरसाइ ॥२०७॥
द्वि० विशेष	सोवत जागत दिशि बिदिशा देखि परैं घनश्याम।
उदा०	कंस हृदय आठहु पहर कृष्ण करैं विश्राम ॥२०८॥
तृ० बिशेष	गीता के पढ़तहि पढ़े चारि वेद सह तत्व।
उदा०	वृन्दावन लखतहि लख्यो गऊ लोक सुभ तत्व ॥२०९॥
व्याघात ल०	जौन वस्तु तें होइ जो तासु विरोधी जौन।
	तिही वस्तु सों होइ जब है व्याघात सुतौन ॥२१०॥
उदा०	जा सुमिरन सों भक्तजन पावहिं पद निर्वान।
	ताही सों सनि जगत जन भ्रमत फिरहिं अज्ञान ॥२११॥
द्वि० व्याघात ल०	काज विरोधी काज ही जहाँ समर्थ्यो जात।
	काज हेतु ही सों जहाँ सो दूजो व्याघात ॥२१२॥

उदा० कर्म करहिं भव बंध डर योगी श्रुति अनुसार।
परमहंस करमहिं तजहिं तिहि डर करि निरधार ॥२१३॥

कारन माला ल० कार्य हेतु जहँ पूर्व को पर को उलटि जो होइ।
ऐसी जहाँ परम्परा कारन माला सोइ ॥२१४॥

उदा० दल तें बल बल तें विजय तातें राज हुलास।
कृत तें सुत सुत तें सुजस जस ते दिवि महँ बास ॥२१५॥
उलटि यथा धन गुन ते गुन पढ़न ते पढ़िवो गुरुतें होइ।
गुरु सुकर्म तें सुभ करम करियै उत्तम जोइ ॥२१६॥

एकावली ल० ग्रहन मुक्ति की रीति सों जहाँ अर्थ की औलि।
अलंकार एकावली ताहि कहहिं कवि मौलि ॥२१७॥

उदा० पढ़िबे गुनिबे लौं गुनन अभ्यासन लौं जानि।
अभ्यासहु निज ज्ञान लौं ज्ञानि भक्ति लौं मानि ॥२१८॥

माला दीपक ल० मिलि दीपक एकावली माला दीपक होइ।
इमि बरनहिं आभरन यह कवि कोविद सब कोइ ॥२१९॥

उदा० जग जश तें जस धरम तें धरम करम ते चास।
करम वेद बचनानि तें भरयो भूमि भरतास ॥२२०॥

सार ल० सरस एक तें एक जहँ अलंकार तहँ सार।
कहुँ स्तुति कहुँ निन्दमय कहुँ उभय व्यवहार ॥२२१॥

स्तुतिमय पूज्य नरन तें अमर अति तिन तें हरि भगवान।
उदा० पूज्य हरिहुं तें हरि भगत जा उर उनको थान ॥२२२॥

निंद्यमय सब तें लघु मस मसक तें रजकन पुनि परमानु।
उदा० परमानहुँ तें गुनि रहित जानत जिनहि जहानु ॥२२३॥

उभयमय बली त्रिदश पुनि दस बदन ताते बलि सगर्व।
उदा० बलि बाली तें लोभ है हरयो अनुज धन सर्व ॥२२४॥

यथासंख्य ल० क्रम तें उक्त पदार्थ को क्रम तें अन्वय यत्र।
कवि भूषण भूषण अहै यथा संख्या वर तत्र ॥२२५॥

उदा०	सुर कों अरि कों मित्र कों भृत्य रंक कों भूप।
	पूजहु मारहु आदरहु रक्षहु देहु अनूप ॥२२६॥
पर्य्याय ल०	क्रमहीं सो जहँ एक को होय अनेक अधार।
	कै अनेक को एक ही द्वै पर्य्याय प्रकार ॥२२७॥
प्र० पर्य्याय	हुती देह में लड़िकई बहुरि तरुणई जोर।
उदा०	विरुधाई आई अबौ भजत न नंद किशोर ॥२२८॥
द्वि० पर्य्याय	मेरो ई मन मोहि तजि हरि तन कियो निवास।
उदा०	ताहूँ को तजि कै बस्यौ अब सौतिन के पास ॥२२९॥
परिवृत्ति ल०	थोरो ई दीने जहाँ बहुत पदारथ लेत।
	अलंकार परिवृत्ति तेहि बरनहि बुद्धि निकेत ॥२३०॥
उदा०	विंध्याचल मैं गंग जल अर्क सुमन लै सेत।
	दै कै देव कपर्दि कहँ जातरूप वर लेत ॥२३१॥
परिसंख्या ल०	जहाँ एक ही बस्तु को है निषेध इक ठाम।
	दूजे थल थापन तहाँ परिसंख्या यह नाम ॥२३२॥
उदा०	बाल मान नैहर नहीं है बूढ़े पितु धाम।
	नहिं बृज में घनश्याम हैं नभ में लसे ललाम ॥२३३॥
बिकल्प ल०	एक बिरोधी एक को तिन में कहिबै अद्य।
	कै यह कै वह होइ गो सो बिकल्प अनवद्य ॥२३४॥
उदा०	बल जू अद्य नवाय हैं हलकै तेरौ शीश।
	जमपुर के पुर थापिहैं तोहि अबहिं अवनीश ॥२३५॥
समुच्चय ल०	एक साथ ही भाव बहु कछु कारण ते यत्र।
	अलंकार उर आनियै सुकवि समुच्चय तत्र ॥२३६॥
उदा०	फेरति दृग हेरति हरिहि टेरति नाम सुनाय।
	फिरति थिरकति उझकति झुकती झकति झरोखे आय॥२३७॥
द्वि समुच्चय ल०	एक एक ही हेतु तें जो कारज सिद्धि होय।
	तेहि काजहि सब मिलि करैं दुत्तीय समुच्चय सोय ॥२३८॥

उदा०	गंगा गीता गुरु गऊ गोकुल औ गिरिराज।
	ये सब मिलि कै देत हैं सतगति दिव्य दराज ॥२३९॥
कारक दीपक ल०	क्रम गति क्रिया अनेक को कर्त्ता एकहि होइ।
	कविता उपकारक अहै कारक दीपक सोइ ॥२४०॥
उदा०	आवत पुनि अनमिख लखत लखि हियरे हरषात।
	वेणु बजावत नाम लै तो हित गोकुल तात ॥२४१॥
समाधि ल०	अपर हेतु ते कार्य जहाँ सुगम भाग्यवश होइ।
	सो समाधि गत व्याधि बर बरनत कवि सब कोइ ॥२४२॥
उदा०	चलत कंत कहं कामिनी रोकन चहत प्रवीन।
	मारजार गोद्वार मग आयो घट जल हीन ॥२४३॥
प्रत्यनीक ल०	लखि अजीत निज शत्रु कहैं ता पच्छी कहँ जत्र।
	करै पराक्रम सत्य निज प्रत्यनीक है तत्र ॥२४४॥
उदा०	हारिमार त्रिपुरारि सों महाकोप विस्तारि।
	तदनुकारि मुनि वरण को उर बेधत सर मारि ॥२४५॥
काव्यार्थापत्ति	करै काज गुरु तिहि कहा लघु मैं बार लगत्ति।
ल०	होइ उक्ति ऐसी तहाँ है काव्यार्थापत्ति ॥२४६॥
उदा०	शोक भरी मन्दोदरी बोली करि सुबिचार।
	बलशाली बाली बध्यो तोहि मारत को बार ॥२४७॥
काव्यलिंग ल०	उक्त अर्थ जो पुष्ट नहिं बिना समर्थ न होइ।
	ताहि समर्थिय युक्ति सों काव्यलिंग है सोइ ॥२४८॥
उदा०	अब भव पारावार के पार जात नहिं बार।
	हैं सहाय रघुराय जू नौका खेवन हार ॥२४९॥
अर्थान्तरन्यास	जहाँ विशेष सामान्य तें होय समर्थित खास।
ल०	कै सामान्य विशेष तें सो अर्थान्तर न्यास ॥२५०॥
प्र० उदा०	हरि प्रताप गोकुल बच्यो का नहिं करहिं महान।
	हरिनकसिपु रावण बध्यो यम मुख को न समान ॥२५१॥

द्वि० उदा० बर तांबूल प्रसंग तें यत्र जात नृप हाथ।
तैसेइ रत्न प्रसंग तें बसन खंडता साथ ॥२५२॥

विकस्वर ल० वसि विशेश सामान्य पुनि पुनि विशेष वसि यत्र।
इक इक कौं दृढ़ क्रमहिं तें करहि पिकस्वर तत्र ॥२५३॥

भेद भेद विकस्वर मैं जुगल बरनत सुकवि दुहूँन।
जो विशेष अन्तिम सु तौ कहुँ उपमान कहूँन ॥२५४॥

प्र० उदा० तुम दै हौ सत देत हैं जिमि सुर तरु मन मानु।
मुनि तुम मम उर तम हरयो सुजन रीति जिमि भानु॥२५५॥

द्वि० बि० उदा० दुर्योधन नहिं मानि है खल की औषधि हैन।
नींबहि गुड़ सों सींचिये होति मधुरता यैन ॥२५६॥

प्रौढ़ोक्ति ल० कारज गत उत्कर्ष को जो न हेतु तेहि हेतु।
करबरनिय प्रौढोक्ति कविमान तासु कहि देतु ॥२५७॥

उदा० जमुना नीर नहात नित मन मोहन तन श्याम।
तो उरोज परसे कठिन ताको उर है बाम ॥२५८॥

संभावना ल० जो यह होइ तौ होइ यह ऐसी उक्ति सुयत्र।
अलंकार संभावना बरनहि कविजन तत्र ॥२५९॥

उदा० जौं ब्रज रज होते सुतौ लगते लालन पाय।
जौ खग होते तौ तुरत जाते जहँ ब्रजराय ॥२६०॥

मिथ्याध्यवसिति ल० कथित झुठाई ताहि अति दृढ़ करिबे को यत्र।
अपर झुठाई कल्पिये मिथ्याध्यवसिति तत्र ॥२६१॥

उदा० बहति बारि परघर बिरचि शुचि शीतल करि आग।
हे तरुणी बस तरुण तन करहु विषय रस त्याग ॥२६२॥

ललित ल० प्रस्तुत गत वृत्तान्त जो वर्णनीय तजि तौन।
अप्रस्तुत प्रतिबिंब वत कहिय ललित मति भौन ॥२६३॥

उदा० अब पछताये होत का चुग्यो चिरैयन खेतु।
चाहत उतरन पार तूं बिना नाव बिनु सेतु ॥२६४॥

प्रहर्षण ल०	तीन प्रहर्षन मैं अहै प्रथम प्रहर्षन सोइ।
	जतन बिनाही लाभ जहँ बांछित फल को होइ ॥२६५॥
उदा०	जा को मिलिबो चहत है महत मनोहर श्याम।
	सो चलि आई आपु ही पूछत तुम्हरो नाम ॥२६६॥
द्वि० प्रहर्षण ल०	बांछित फल तें अधिक फल विनहीं श्रम जहँ होइ।
	कवि रस वर्णन कहत हैं द्वितीय प्रहर्षन सोइ ॥२६७॥
उदा०	चह्यो सुदामा अल्प धन दियो भूरि भगवान।
	तिय हिय पिय दरशन चह्यो आय दियो रतिदान ॥२६८॥
तृ० प्रहर्षण ल०	तृतीय प्रहर्षन तहँ जहाँ फल साधक जु उपाय।
	ताही को साधन करत फल आपुहि मिलि जाय ॥२६९॥
उदा०	पिय पाती सुधि लेन कों निकरी नारि बजार।
	उततें आवत मिलि गये गिरिधर लाल उदार ॥२७०॥
विषादन ल०	जो विरुद्ध चित्र चाह तें सोई कारज होइ।
	ताहि विषादन कहत हैं अलंकार सब कोइ ॥२७१॥
उदा०	हरि सों रति इच्छा करी अतिहि चाह सों बाल।
	सुन्यो जात मथुरा नगर लै अक्रूर गोपाल ॥२७२॥
उल्लास ल०	जहँ इक के गुन दोष तें होइ और को तौन।
	उल्लासालंकार तेंहि बरनहिं कवि मति भौन ॥२७३॥
	कहुँ गुन तें गुन दोस तें दोस गुनहुँ ते दोस।
	दोसहुं तें गुन होत इमि बरनत कवि मति कोस ॥२७४॥
गुनतें गुन	तीरथ चाहैं परसि मोहि करहिं सुपावन संत।
उदा०	शास्त्र चहहिं पढ़ि सफल मोहि करै विग्यबुधवंत ॥२७५॥
दोषतें दोष	या राजा के राज्य में भूलि जाय जन सोय।
उदा०	राज-भृत धन चोरिहैं तब का करिहै रोय ॥२७६॥
गुन तें दोष	सो घर को सु अभाग जहं यज्ञ दान नहिं होइ।
उदा०	सो विद्या किहि काम जेहि शिष्यहु लहै न कोइ ॥२७७॥

दोष तें गुन	समुझावत मार्‌यो चरण हरन कियो तुव मान।
उदा०	लाभइ तोई गुनहु जो बच्यो विभीषण प्रान ॥२७८॥
अवज्ञान ल०	गुन तें गुन नहि होय अरु नहीं दोष तें दोस।
	कहहि अवज्ञा दोय विधि इमि कवि कविता कोस ॥२७९॥
प्र० अवज्ञा	सत कबिता हूँ के सुने नहिं हुलसै सद चित्त।
उदा०	ऊसर उपजै अन्न नहिं बरसत हूं जल नित्त ॥२८०॥
द्वि० अवज्ञा	शिव तु हालाहल पियो कहा अमृत की हानि।
उदा०	राखि लगाये अंगनहिं चंदन लघुता मानि ॥२८१॥
अनुज्ञा ल०	जहँ अभिलाषा दोष की ताही मैं गुन पाय।
	तहाँ अनुज्ञा आभरन कहहिं सकल कवि राय ॥२८२॥
उदा०	हे विधि मोहि कब करहुगे नर तन तें व्रज धूरि।
	गो चारत गोपाल तन हौं बात बस पूरि ॥२८३॥
लेश ल०	दोसहि गुन करि बरनिये गुनहि दोस करि यत्र।
	कवि-कुलेश बरनन करहि लेश अलंकृत तत्र ॥२८४॥
उदा०	बरु अरसिक पशु ही भले बधिकहि देखि पराहिं।
	राग रसिक मृग मोह बस बरबस मारे जाहिं ॥२८५॥
मुद्रा ल०	प्रस्तुत के बरनत विषैं कढ़ै और को नाम।
	पै न विदित सह पाठ के सो मुद्रा गुनधाम ॥२८६॥
उदा०	परम भागवत रुद्रजित मत्त सेय पद दोय।
	हरि अवतार प्रमाण पर दोहाई तब होय ॥२८७॥
रत्नावली	जासु विदित सह पाठ है कढ़ै ताहि को नाम।
ल०	प्रस्तुत के बरनन विषैं रत्नावलि तिहि ठाम ॥२८८॥
उदा०	वास करत आराम मैं भरतहि तन आनन्द।
	देत लक्ष्मन को गुनिन शत्रुदमन नंदनंद ॥२८९॥
तद्‌गुण	रूप आदि गुण पुंज मैं जो निज गुण तजि तौन।
ल०	दूजे को गुन लेहिं तहँ है तद्‌गुन गुन भौन ॥२९०॥

उदा॰ तिय हिय ही ए धुकधुकी, नील बरण दरसाय।
पिय हिय की कंचन बरन परे परसपर छाय ॥२९१॥

पूर्व रूप ल॰ पूर्वरूप ह्वै निज गुनहि तजि पुनि निज गुन लेइ।
दुत्तिय वस्तु नासेहु नहीं मिटै अवस्था सेइ ॥२९२॥

प्रथम उदा॰ जपत लाल माला लिये लाल नाम तुव बाल।
मनिका परसत असित पुनि करतल दुति परिलोल॥२९३॥

द्वितीय उदाहरण कहा भयो जो करन को मरन भयो नर राव।
रही जगत में आपु की दीह दान विधि छाय ॥२९४॥

अतद्गुण ल॰ संगी को रूपादिगुण करत न अंगीकार।
ताहि अतद्गुण आभरन बरनत बुद्धि अगार ॥२९५॥

उदा॰ सदा श्याम हिय तिय वसति तिय हिय हरि विश्राम।
तऊ न गोरे होत हरि श्यामा होति न श्याम ॥२९६॥

अनुगुण ल॰ निज गुन सों सरसात जो तैसी लहै सहाय।
तातें अरु अधिकाय सो अनुगुन नाम कहाय ॥२९७॥

उदा॰ कुटकी को पुट दै कियो निंब पत्र रस क्वाथ।
ता कटुता नहिं कहि सकै जे पटु पंडित नाथ ॥२९८॥

मीलित ल॰ समता तें इक वस्तु मैं अपर वस्तु छपि जाय।
कछु न भेद जान्यो परै मीलित तहां लखाय ॥२९९॥

उदा॰ पान पीक अधरान मैं सखी लखी नहिं जाय।
कजरारी अखियांन में कजरा री न लखाय ॥३००॥

सामान्य ल॰ बहुत वस्तु सम होय जहँ नहिं विशेष लखि जाय।
जानि परै सब एक से तहँ सामान्य कहाय ॥३०१॥

उदा॰ खरी दीप माला विषे बाला अति अभिराम।
को तिय को दीपक सिखा मनहिं विचारत श्याम ॥३०२॥

उन्मीलित ल॰ समता तें इक मैं अपर वस्तु जाय छिपि जत्र।
तदपि भेद कछु लखि परै उन्मीलित है तत्र ॥३०३॥

उदा०	हरित माल के कुंज मैं नहि लखाय छवि खानि।
	पीतांबर सों लेत हिय तिय पिय कौं पहिचानि ॥३०४॥
विशेष ल०	समता संजुत वस्तु मैं कछु विशेष दरसाय।
	जातें जान्यो जाय वह तिहि विशेष ठहराय ॥३०५॥
उदा०	सेत हंस बक सेत हैं कैसे परैं लखाय।
	पय पानी आगे धरैं भेद सकल खुलि जाय ॥३०६॥
उत्तर ल०	अभिप्राय संयुत जहां गूढ़ोत्तर दान।
	अलंकार उत्तर तहाँ बरनत बुद्धि निधान ॥३०७॥
उदा०	बसन कहौं कैसें पथिक है सूनो मम धाम।
	पैहौ वा आराम मैं सब विधि को आराम ॥३०८॥
चित्र ल०	वही प्रश्न उत्तर कहै कहियत करि निरधार।
	अरु इक उत्तर प्रश्न बहु सो चित्रालंकार ॥३०९॥
एक प्रश्नोत्तर	कोकिल सुन्दर नाद कर कामहि बल सुविशाल।
उदा०	केकीबहुताबजविषें को समंत महिपाल ॥३१०॥
अनेक प्रश्नोत्तर	कौन चलै केदार मैं काको थल केदार।
	को है रे वक औषधीहर उत्तर निरधार ॥३११॥
सूक्ष्म ल०	पर आशय लखिबे कौ चेष्टा साभिप्राय।
	उत्तर रूप अनूप जहँ तहाँ सूक्ष्म कविराय ॥३१२॥
उदा०	लखन लख्यो रघुनाथ दिशि निसिचर व्याहन काम।
	तर्जनि पैं धरि तर्जनी ऐंचि लई तव राम ॥३१३॥
पिहित ल०	कोऊ पर वृत्तांत लखि ताहि प्रकाशै यत्र।
	चेष्टा साभिप्राय करि पिहितालंकृत तत्र ॥३१४॥
उदा०	प्रात लाल आए निरखि जावक लाग्यो भाल।
	आतुर चातुरता भरी दई आरसी बाल ॥३१५॥
व्याजोक्ति ल०	जहँ गोपन आकार को करै बात कहि अन्य।
	तहँ व्याजोक्ति बखानहीं जे कवि धरनी धन्य ॥३१६॥

उदा०	अरज न मानी नेकहूँ बरज रही बहु बार।
	वा वन बहुत गुलाब तरु क्यौं न लगै तन डार ॥३१७॥
गूढ़ोक्ति ल०	जहँ कोऊ कहि और सों औरहि देइ सुनाय।
	जातें लखहिं न निकट जहँ तहँ गूढ़ोक्ति कहाय ॥३१८॥
	गूढ़ोक्ती के भेद कौ दोय भाँति दरसाहिं।
	कहूं श्लेष युत देखियै कहूँ श्लेष जुत नाहिं ॥३१९॥
श्लेषयुक्त-	जाहु परौसी या समय या दिन आवत बात।
गू० उदा०	आये पाहन व्यग्र चित सुरति करौंगी रात ॥३२०॥
श्लेष रहित	या छन गंग न जाय हौं भीर होति तट माँझ।
गू० उदा०	ताते जाय नहाय हौं सखी अकेली साँझ ॥३२१॥
विवृतोक्ति ल०	गुप्त अर्थ जहँ आपुही कवि सूचित करि देत।
	अलंकार विवृतोक्ति तेहि बरनत बुद्धि निकेत ॥३२२॥
	लक्ष्य माहिं विवृतोक्ति के गुप्त अर्थ विधि दोय।
	शब्द शक्ति सों होय कहुँ अर्थ शक्ति सों होय ॥३२३॥
शब्द-शक्ति-	जौ गोरस चाहत लियो तौ आवहु मम धाम।
उदा०	यों कहि याचक सों हरिहिं सूचित किय रति ठाम ॥३२४॥
अर्थ-शक्ति	मेरो मन न अघात है सुनि झूठी रस बात।
उदा०	इमि कहि झूठी बात तब लाल लगाई गात ॥३२५॥
युक्ति ल०	निज मर्महि गोपन करै कछू क्रिया करि यत्न।
	गिरिधर दास बखानिए युक्ति अलंकृत तत्र ॥३२६॥
उदा०	हरि सों रति करि तिय उठी आइ गई तित सास।
	चीर फँसाइ करीलसों ठाढ़ी लेति उसाँस ॥३२७॥
लोकोक्ति ल०	लोक प्रवाद बखानिये वचन बीच जेहि ठौर।
	अलंकार लोकोक्ति तेहि बरनहि बुध सिर मौर ॥३२८॥

उदा॰	कहा नसावत शोक कों सूखो ज्ञान बताय। ऊधो आप सुनी कहूँ प्यास ओस तें जाय ॥३२९॥
छेकोक्ति ल॰	अपर अर्थ व्यंजक जहाँ सोइ लोकोक्ति लखाय। वचनन की रचनान तें तहँ छेकोक्ति कहाय ॥३३०॥
उदा॰	दूती पद छूती कहा कौनो नहिं प्रतिबंध। दोनों बनि आयो भलो सोनो और सुगंध ॥३३१॥
वक्रोक्ति ल॰	सुनत वाक्य रोषादिवस रचै अर्थ जहँ और। कहुँ श्लेषहुँ काकु सौं वक्र उक्ति तिहि ठौर ॥३३२॥
श्लेष-वक्रोक्ति उदा॰	मानत जोगहि सुमति बर पुनि-पुनि होति न देह। मानत जोगी जोग कौं नहिं हम करत सनेह ॥३३३॥
काकु-वक्रोक्ति उदा॰	तोहि त्यागि श्यामहि सखी अरु तिय नाहिं सुहाय। अरु तिय नाहिं सुहाय सुनि बोली नैन चढ़ाय ॥३३४॥
स्वभावोक्ति ल॰	शिशुत्वादि जो जाति है तदगत जौन सुभाय। ताको बरनन करत तहं स्वभावोक्ति कविराय ॥३३५॥
उदा॰	धूर धुरेटे धरनि मैं धरत अटपटे पांय। लाल लटपटे आखरनि भाषत सखि हरषाय ॥३३६॥
भाविक ल॰	भूत भविष्य पदार्थ को जहाँ सकल कविराय। बरनत करि प्रत्यक्ष तहँ भाविक भाष्यो जाय ॥३३७॥
भूत-प्रत्यक्ष उदा॰	बेणु बजावत मधुर सुर कोटि लजावत मेनु। ऊधो आवत अजहुं हरि साँझ चरावत धेनु ॥३३८॥
भविष्य-प्रत्यक्ष उदा॰	ग्राम सिंह नृप बृंद मैं श्याम सिंह सम विप्र। मैं देखत कर पकरि मोहि जात सुरथ धरि छिप्र ॥३३९॥
उदात्त ल॰	श्लाघनीय जो चरित सो अंग और को होइ। अरु अति संपति बरनिबौ है उदात्त विधि दोय ॥३४०॥

प्र॰ उदात्त	मुनि जन ध्यावहिं जासु पद दरसन पावहिं रंच।
उदा॰	ते कुबजा के भवन मैं राजत बैठे मंच ॥३४१॥
द्वि॰ उदात्त	तो घर तैं डारहिं जनी घरी मनीनबुहारि।
उदा॰	तिन ते भे नग नग घने लखहु मेरु अनुहारि ॥३४२॥
अत्युक्ति ल॰	जहँ उदारता सूरता विरहादिक की उक्ति।
	अद्भुत मिथ्या होय तहँ अलंकार अत्युक्ति ॥३४३॥
उदारता उदा॰	भूपति तेरे दान सों घर घर भयो सुमेर।
	भटकहिं देत प्रदच्छिना सूर लहै बहु फेर ॥३४४॥
शूरता उदा॰	तो प्रताप डर मान तजि शत्रु गये यम लोक।
	इतहु न मारै आइ यह तऊ हृदय डर ओक ॥३४५॥
विरह उदा॰	जा वन विरहिन जाति है तजति स्वास शिखि ज्वाल।
	ता वन के साखी गिरैं राखी ह्वै तत्काल ॥३४६॥
निरुक्ति ल॰	जहाँ योगवस नाम को कल्पित औरै अर्थ।
	तहँ निरुक्ति भूषण कहैं कवि कुल तिलक समर्थ ॥३४७॥
उदा॰	जौ परकीया त्यागि कै चले विदेश सचैन।
	तौ विषई तुम साँच हौं अबला मानहि लैन ॥३४८॥
प्रतिषेध ल॰	जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीर्तन दरसाय।
	प्रतिषेधालंकृति कहइं तिहि अति मति कविराय ॥३४९॥
उदा॰	नहिं विराट को पाक घर जहँ करछी व्यवहार।
	यह संगर जामैं चलैं बरछी बारम्बार ॥३५०॥
विधि ल॰	सिद्ध वस्तु ही को जहाँ कोऊ करै विधान।
	विधि भूषन तहँ जानिये इहि विधि कहहिं सुजान॥३५१॥
उदा॰	क्रम सौं पहुँचत अरक जब सक्रम करक नगीच।
	जीवन प्रदशति होत तब जीवन प्रद जग बीच ॥३५२॥

हेतु ल०	जहाँ काज के साथ ही कारन बरन्यो होइ। कै दोउन की एकता होत हेतु विधि दोइ ॥३५३॥
प्र० हेतु उदा०	गरजि उठे घन मानिनी मान मिटावन काज। धनु टंकार्‍यो भूपनै शत्रु नसावन आज ॥३५४॥
द्वि० हेतु उदा०	मोहि परम पद मुक्ति सब तो पदरज घनश्याम। तीनि लोक को जीतिबो मोहि बसिबो ब्रजग्राम ॥३५५॥

—: अर्थालंकार समाप्त :—

शब्दालंकार :—

	इमि अर्थालंकार सत बरनि बुद्धि अनुसार। बरनत गिरिधर दास कवि अब शब्दालंकार ॥३५६॥
अनुप्रास ल०	स्वर बिन व्यंजन वरन की जहं समता दरसाइ। स्वर संयुक्तहु कहहिं तेहि अनुप्रास कविराइ ॥३५७॥
उदा०	मन मोहन सोहत भले लसत रसीले नैन। ठाढ़े गुन गाढ़े अहैं कहत छबीले नैन ॥३५८॥
छेकानुप्रास ल०	समता बहु व्यंजनन की क्रम सों जहं इकबार। तहं छेकानुप्रास है सुनियै सुकवि उदार ॥३५९॥
उदा०	शुभ सोभा सो है सही बोरी बर चल चाल। सोना सीनो रस रसी बनी बनै बलि बाल ॥३६०॥
वृत्यनुप्रास ल०	समता बहु व्यंजनन की जहं बिनु क्रम इकबारु। कै क्रम सों बहु बार तहं वृत्ति अलंकृत चारु ॥३६१॥
	एकहु व्यंजन की जहाँ समता करति निवास। एक बार बहु बार करि तहँ वृत्यनुप्रास ॥३६२॥

एक बार बहुव्यं०	लसे शैल पर रूप धर नव बन हरि रस साथ।	
-समता उदा०	खासे सुखमय चारु रुचि धरे राधिका हाथ ॥३६३॥	
क्रम सों बहुबार	नैन बने बनिता सुखद ब्रज बिधु बुध बुधि ऐन।	
व्यंजन स० उदा०	नौल नील नल नाच्छ हरि कोकिल कल किल बैन ॥३६४॥	
एक व्यं० की एक-	ठाढे गोढ़े गुनवनो सखि देखौ हम श्याम।	
बार समता उदा०	पीति मंत सोहै महा निशि बसि श्यामा धाम ॥३६५॥	
एक व्यं० की बहु-	घेरि जोर करि सोर गुरु जुरे वारि धरि घोर।	
बार समता उदा०	फिरि घिरि डारैं वारि बहु गिरि पर चारों ओर ॥३६६॥	
श्रुत्यनुप्रास ल०	तालु रदादि कथानकृत व्यंजन को उच्चार।	
	जहँ सादृश अनुप्रास-श्रुति बरनिय करि निरधार॥३६७॥	
उदा०	चतुर जानकी चारु छबि चंचल अच्छ प्रतच्छ।	
	झकति चंद मुख छनहि छन जाय झरोखे स्वच्छ ॥३६८॥	
अंत्यानुप्रास ल०	आदिस्वर संयुत जहाँ व्यंजन आवृत होइ।	
	सो अन्त्यानुप्रास है कहिय तुकान्तहिं जोइ ॥३६९॥	
उदा०	नीर धीर पर पीर हर संग अहीर की भीर।	
	नीर तीर जहं कीर बहु लसे सीर धरि वीर ॥३७०॥	
लाटानुप्रास ल०	शब्द अर्थ इन दुहुन की जहं पुनरुक्ति प्रकाश।	
	तातपरज महं भेद कछु तहं लाटानुप्रास ॥३७१॥	
उदा०	राजिव मुख राजिव नयन लखौ नयन की कोर।	
	करि करुना करुना करन दुख चोरौ दुख चोर ॥३७२॥	
यमक ल०	स्वर व्यंजन गन की जहाँ आवृति सुकवि बखण्ड।	
	यमक सोइ है दोय बिधि इक अखंड इक खण्ड ॥३७३॥	
	सो अखण्ड सार्थक सबै शब्द यमक कौ होय।	
	खण्ड शब्द सार्थक कोऊ कोउ निरर्थक सोय ॥३७४॥	

अखण्ड उदा०　　भूप करन कुण्डल करन करन शत्रु मद नास।
आदि वरन वर वरन बित उज्जल वरन प्रकाश ॥३७५॥

खण्ड उदा०　　जन उधरन अंबुज धरन वर अधरन छवि खानि।
सरन सुखद अरि सरन जित रस रन चित मुद दानि॥३७६॥

शब्द अर्थ आभरन दोऊ इहि विधि भये समाप्त।
इनकौ पढ़ि गुनि गुनिन कौं ह्वै है अति सुख प्राप्त ॥३७७॥

कवि भारति भूषण परम भारति भूषण एहु।
भारति चरनु सनेह धरि सत कवि इहि पढ़िलेहु ॥३७८॥

विधि विधि गुनिशिव शिवहि गुनिकरतचरनरज आस।
बार बार तिनके चरन बन्दत गिरिधर दास ॥३७९॥

इति श्री नन्दनन्दनपदारविंदमलिंद-धनाधीश श्री बाबू गिरिधर दास कवीश्वर:विरचितं भारती-भूषणमलकारं समाप्तम्।



जय जन भारती

बंगीय हिन्दी परिषद